भारतीय कला परम्परा में पुरूष और प्रकृति चिन्तन

डॉ0 ऋषिका पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग
गिन्नी देवी मोदी महिला महाविद्यालय
मोदीनगर, गाजियाबाद, (उ0प्र0)
ईमेलः pandey.rishika11@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 08.04.2025
Approved: 23.05.2025

डॉ0 ऋषिका पाण्डेय

भारतीय कला परम्परा में पुरूष और प्रकृति चिन्तन

Vol. XVI, Sp.2Issue May 2025
Article No.15 Pg. 128-131

Online available at
https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-2-rbd-college-bijnore-may-25

DOI: *https://doi.org/10.31995/jgv.2025.v16iSI005.015*

सारांश

पुरूष और स्त्री, साधारण रूप में यह मानव जीवन में दो लिंग के रूप में जाने जाते हैं। प्रश्न यह है कि भारतीय कला परम्परा में इन दो प्रतीकों या आकृति अंकन में निहत अर्थ क्या है ? मेरे अनुसार यह सृजन है। सृजन – नवीन जीवन का, नवीन विचार का। यदि हम इन दो प्रतीकों (स्त्री और पुरूष) के अंकन का पुरातन प्रमाण जानने की चेष्ट करते हैं तो अद्यैतिहासिक काल के सिन्धु घाटी सभ्यता तक पहुँच जाते हैं। यह कांस्य युग की सभ्यता लगभग 3300 ईसा पूर्व से 1300 ईसा पूर्व के मध्य की सभ्यता थी। इस सभ्यता से प्राप्त विभिन्न अलिखित साक्ष्यों जैसे मूर्ति शिल्प में योनी और लिंग के निर्माण की परम्परा पायी जाती है। योनी से तात्पर्य गर्भ या श्रोत से है। यह नवीन सृजन की शक्ति है। विश्व के लगभग सभी सभ्यताओं में शक्ति पूजा का प्रमाण विभिन्न रूपों में मिलता रहा है। सिन्धु घाटी सभ्यता में भी यह जीवन श्रोत या गर्भ के रूप में निर्मित किया गया है।

मुख्य शब्द :

पुरुष, प्रकृति, सृजन, शक्ति, जीवन, प्रतीक, दर्शन, चिन्तन।

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

https://doi.org/10.31995/jgv.2025.v16iSI005.015

भारतीय कला परम्परा में पुरूष और प्रकृति के सम्बन्ध को समझने के लिए हमें भारतीय दर्शन को समझना होगा। भारतीय दर्शन का उद्‌गम वेद है। वेदों के चिन्तन का विस्तार हमें उपनिषद् में प्राप्त होता है। वेदों को 'अपौरूषेय' कहा गया है। अर्थात् इसकी रचना किसी पुरूष के द्वारा नहीं की गयी। इसकी ऋचायें सम्पूर्ण प्रकृति और प्राकृतिक व्यवस्था का गुणगान करती है। इन वेदों में प्राकृतिक व्यवस्था एवं उनके अनुशीलन का दिशा निर्देश प्राप्त होता है। इन ऋचाओं को मुनियों ने संकलित किया। इन वेदों पर गूढ़ चिन्तन उपनिषदों में किया गया। इनमें ब्रह्म (पुरूष) को निरंकार, स्वप्रकाशानन्द, अनादि, अनन्त आदि कहा गया। इनके अनुसार प्रकृति त्रिगुण (सत्व, रजस, तमस) रूप है और ब्रह्म निर्गुण है। ब्रह्म प्रकृति (जिसे दर्शन में माया भी कहा गया है) के साथ संयोग करके स्वयं को सगुण रूप में व्यक्त करता है तथा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के रूप में प्रतिष्ठित होता है। सांख्य दर्शन में विस्तृत रूप से इसका चिन्तन प्राप्त होता है। इनके अनुसार प्रकृति विश्व का कारण है। वह ज्ञान का विषय और परिवर्तनशील है। पुरूष ज्ञाता, कार्य–कारण मुक्त और अपरिवर्तनशील है। संख्या दर्शन के मतानुसार सम्पूर्ण विश्व पुरूष और प्रकृति के मिलन या सहयोग का परिणाम है। यह मिलन प्रकृति की साम्यावस्था को तोड़ता है और विकास की क्रिया प्रारम्भ होती है अर्थात् विकास के मूल में पुरूष और प्रकृति का संयोग निहित है। यह ही जीवन सृजन है।

वेदांत दर्शन में पुरूष और प्रकृति का चिन्तन करते हुए हिरण्यगर्भ का वर्णन मिलता है। इसके अनुसार आरम्भ में हिरण्यगर्भ था। वह समस्त सत्ता का स्वामी था। सृजन की इच्छा से उसने स्वयं को दो भागों–पृथ्वी और आकाश में विभक्त किया और इन दोनों के मिलन से जीवन की उत्पत्ति हुयी। ये प्रथम युगल बने। इस प्रकार आकाश और पृथ्वी (पुरूष और प्रकृति) एक हिरण्यगर्भ के ही दो रूप हैं जो एकाकार होकर सृजन का आरम्भ करते हैं। संक्षेप में दो का मिलन ही जीवन की सम्भावना, जन्म और विकास का कारक है। हिन्दू धर्म में आज भी शिवलिंगम् की पूजा परम्परा है जिसका सम्पूर्ण आकार सृजन और विकास का प्रतीक है।

प्रश्न यह उठता है कि यह पुरूष और प्रकृति भारतीय कला परम्परा को कैसे प्रभावित करते हैं ? कलाकार समाज से प्रभावित होता है उसकी कलाकृति तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब होती है। कला की अभिव्यक्ति किसी पठनीय लिपि पर आश्रित न होते हुए सार्वभौम है। यही कारण है कि किसी काल की सामाजिक व्यवस्था एवं परम्पराओं को जानने के लिए चित्रों का भी अध्ययन किया जाता है। भारतीय चिन्तन परम्परा गूढ़ है। उसने सदियों से चले आ रहे वैदिक और उपनिषदीय धारणाओं को जीवन शैली में आत्मसात् किया हुआ है और इसी की अभिव्यक्ति हमें भारतीय कला परम्परा में भी प्राप्त होती है।

यदि हम भारतीय तन्त्र परम्परा की बात करें तो तन्त्र का अर्थ है–व्यवस्था। तन्त्र वह विद्या है जिसके द्वारा तन और मन अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म अर्थात् प्रकृति और पुरूष अर्थात् ब्रह्म और माया का मिलन कर पूर्ण ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। इसमें हमें मुख्यतः दो त्रिभुजों का योग प्राप्त होता है जिसमें नीचे की ओर आता हुआ त्रिभुज प्रकृति या नारी का प्रतीक है जबकि ऊपर जाता हुआ त्रिभुज पुरूष के प्रतीक रूप में अंकित किया जाता है। इन दो त्रिभुजों का युग्म या मिलन सृजन है। इसी प्रकार उर्ध्व रेखा अग्नि अर्थात पुरूष तथा क्षैतिज रेखा प्रकृति का प्रतीक है। दोनों का युगल सृजन को प्रस्तुत करता है और यह अबाहु स्वास्तिक के रूप में भी जाना जाता है।

इस प्रकार भारतीय चिन्तन में हम स्थान–स्थान पर पुरूष और प्रकृति के प्रतीकों व चिन्तनों की परम्परा को देख सकते हैं।

प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में निर्मित विभिन्न मूर्ति शिल्पों का सौन्दर्य पुरूष–प्रकृति युग्मों से विभूषित दिखता है। शालभंजिका भारतीय मूर्तिकला की प्रसिद्ध कलात्मक मूर्तियों में से है। इस प्रकार के अंकनों में एक स्त्री या यक्षी शाल के वृक्ष को पकड़े दर्शायी जाती है। शाल का वृक्ष उर्वरता का प्रतीक है। यह प्रतीक पुनः बौद्ध साहित्य एवं बौद्ध कला में महात्मा बुद्ध की माता मायादेवी के अंकनों में प्रकट होता है जो शाल के वृक्ष को पकड़े हुए बालक बुद्ध को जन्म देती है।

अथर्ववेद के अनुसार ''सर्वप्रथम काम ने जन्म लिया।'' पुरूष और प्रकृति का यह मिलन मिथुन के रूप में जाना जाता है जिसके विभिन्न कलात्मक प्रमाण हमें विभिन्न भारतीय स्थापत्यों जैसे खजुराहो व कोणार्क से प्राप्त होते हैं। इन मिथुनों का मन्दिरों या स्थापत्य की भित्तियों पर निर्माण पूर्ण सौन्दर्यपरक उद्देश्य से था अथवा धार्मिक, यह शोध का विषय रहा परन्तु निर्विवाद रूप से यह मिलन सृजन और विकास का पर्याय है।

पुरूष–प्रकृति युगल परम्परा की श्रृंखला की सफल अभिव्यक्ति हमें कृष्ण–राधा के रास अंकनों में प्राप्त होती है। पूर्ण दार्शनिकता को समेटते कृष्ण और राधा के यह रास चित्र मध्यकालीन राजस्थानी शैली की मुख्य विशेषता है। कृष्ण अर्थात् मोक्षदाता और राधा से तात्पर्य आत्मा से है। मोक्षदाता पुरूष नित्य और अनादि है। आत्मा रूपी राधा समस्त जगत के माया से मुक्त होने अर्थात् मोक्ष की कामना से कृष्ण के चतुर्दिश रास करती हैं। राजस्थानी शैली में यही चिन्तन हमें वियोग श्रृंगारपरक चित्रों में भी देखने को मिलता है जहाँ राधा या नायिका, कृष्ण या नायक की प्रतीक्षा में शोकाकुल स्थिति में दिखायी गयी है। राधा या नायिका के साथ पृष्ठभूमि के सभी पशु–पक्षी एवं वनस्पति भी ऐसी स्थिति में प्रतीकात्मक रूप से शोकाकुल चित्रित किए गए हैं। कृष्ण और राधा के मिलन की स्थिति में पृष्ठभूमि में प्रकृति का श्रृंगार अपूर्व है। यही पुरूष–प्रकृति मिलन जीवन का सार है। जगत के सृजन और विकास की दृष्टि से भी और अध्यात्म के गूढ़ दृष्टिकोण से भी पुरूष और प्रकृति का यह मिलन जीवन साध्य है। द्वैत प्रकृति का नियम है। विकास की यह अनवरत धारा द्वैत का ही परिणाम है। इसी का साक्षात्कार हमें सिन्धुघाटी सभ्यता के योनी और लिंग में प्राप्त होता है। शिव और शिवा स्वयमेव पुरूष और प्रकृति है जिसका मूर्त रूप हमें शिवलिंगम में तथा अर्द्धनारीश्वर के अंकनों में मिलता है और इसकी चरम परिणति कृष्ण और राधा के रूप में स्वयं को एकाकार कर मोक्ष के स्तर को प्राप्त करती है। यह स्थिति आत्मयोग की है अर्थात ब्रहम (चेतन) तथा जीव (जड़) अर्थात आत्मा और जीव के एकाकार की स्थिति है। यही जीवन सत्य है जो कि एक (हिरण्यगर्भ) से अनेक (सृजन) और पुनः अनेक (सृजन) से एक (परब्रह्म) होने की गूढ़ता को स्वयं में समाहित करता है। इस आत्म योग को भारतीय कला अपनी आत्मा में धारण करती है। भारतीय कलाकार के लिए कला ईश्वर द्वारा रचित सृष्टि की उपासना है जिसके द्वारा वह ब्रह्मानन्द की प्राप्त का ध्येय रखता है।

https://doi.org/10.31995/jgv.2025.v16iSI005.015

राजस्थानी कला या अन्य भारतीय कलाओं में कृष्ण और राधा के स्थान पर तत्कालीन राजा व रानी का अंकन भी देखा जा सकता है। क्योंकि राजा प्रजा के लिए पालक पिता के समान माना गया है और रानी प्रजा के लिए माता स्वरूप मानी गयी है। इसके साथ ही हम अन्य चित्रों में भी पुरूष–प्रकृति सम्बन्ध देख सकते हैं। यही सम्बन्ध प्रकृति को माता, भार्या व पुत्री का स्थान प्रदान करता है। बंगाल शैली के कलाकार अवनीन्द्र नाथ टैगोर ने इस प्रकृति को भारत माता के रूप में चित्रित करके गौरवान्वित किया है। आधुनिक कलाकार एम0एफ0 हुसैन के चित्रों में यह प्रकृति देवी और माता के रूप में अंकित है। हुसैन की नारी शाश्वत् है।

आधुनिक कलाकार वीरेन दे पुनः भारतीय कला को तांत्रिक प्रतीकों तक ले जाने का प्रयास करते हुए योनि और लिंग का सृजन अपने चित्रों में करते हैं। उनके लिए यह ब्रह्मांड के सृजन प्रतीक है। यह जीवन की उत्पत्ति का तथा जीवन के सार का प्रतीक है। इस प्रकार वीरेन दे पुनः भारतीय दर्शन के पुरूष और प्रकृति चिन्तन को प्रतीक रूप में चित्र धरातल पर उतारते हुए इस चिन्तन को चित्रभाषा की नवीन ऊर्जा देते हैं।

इस प्रकार भारतीय दर्शन परम्परा में पुरूष और प्रकृति के चिन्तन की एक सौन्दर्य शास्त्रीय धारा हमें वैदिक काल से पूर्व ही प्राप्त होने लगती है। सिन्धु घाटी सभ्यता में हमें इसके पुरातन साक्ष्य शिल्प रूप में प्राप्त होते हैं। वैदिक परम्परा में गूढ़ चिन्तन किया गया और इस चिन्तन परम्परा के साथ विकसित होते समाज ने इस परम्परा को जीवन में आत्मसात किया जिसका स्पष्ट प्रभाव भारतीय कला परम्परा में देखा जा सकता है। जीवन का प्रारम्भ, जीवन मूल्य और मोक्ष, सभी पर किया गया गूढ़ चिन्तन भारतीय कला को प्रभावित करते हुए उन्हें और अधिक समृद्ध और पुष्ट करता है। इस धारा से प्रस्फुटित होती भारतीय कला परम्परा विश्व में अपनी अलग पहचान बनाने में सफल होती है।

सन्दर्भ

1. Alain Danielou, The Hindu Temple, Inner Traditions International. One Park Street Rochester, Vermont 05767, Edition 2001.
2. Prithvi K. Agrawala, Mithuna – The male-female symbol in Indian Art and Thought, MunshiramManoharlal Publishers Pvt. Ltd., 54, Rani Jhansi Road, New Delhi , Edition – 1983
3. M.L. Varadpande, Woman in Indian Sculpture, Abhinav Publications, E-37 Hauz Khas, New Delhi, Edition – 2006
4. Heinrich Zimmer, Myths and Symbols in Indian Art and Civilization,Princeton University Press, Princeton, New Jersey, Edition 1992.
5. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' ''भारतीय मूर्तिशिल्प एवंस्थापत्य कला'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, संस्करण– 2013
6. डॉ गिर्राज किशोर अग्रवाल, ''आधुनिक भारतीय चित्रकला'', संजय पब्लिकेशन्स, किदवई पार्क, राजामण्डी, आगरा।
7. डॉ0 रीता प्रताप, ''भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, संस्करण– 2021
8. डॉ0 शशि झा, प्राग गुप्तकालीन नारी मूर्तियों में सौन्दर्य, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण–2004